| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

श्लील-अश्लील विषयक साहित्यिक धारणाएँ और आठवाँ सर्ग

डॉ0 अशोक कुमार शर्मा

सह आचार्य, हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंगापुर सिटी

शोध सार :-

भारतीय साहित्यिक आकाश में महाकवि कालिदास सबसे दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं उसके प्रतिमानों को अपने साहित्य में विभूषित ही नहीं किया है अपितु मानव एवं प्रकृति के बीच आत्मीय राग भी स्थापित किया है। यद्यपि उनकी साहित्यिक प्रतिभा किसी भी परिचय की मोहताज नहीं है तथापि उनके विषय में इतना कहना पर्याप्त है कि उनकी प्रत्येक रचना भारतीय साहित्य और संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। अपनी साहित्यिक प्रतिभा से दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त करने के पश्चात् भी महाकवि कालिदास को अपनी रचना कुमारसंभव को अधूरा ही छोड़ना पड़ा था। जिसका मलाल उन्हें जीवनभर रहा। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा प्रस्तुत नाटक आठवीं सर्ग में महाकवि कालिदास की सृजनात्मक प्रतिभा पर तत्कालीन समाज के द्वारा लगाए गए आरोप-प्रत्यारोपों के कारणों की तलाश करने का सूक्ष्म अन्वेषण किया गया है।

मुख्य शब्द :- महाकवि कालिदास, साहित्य, श्लील, अश्लील, रचना, रचनाकार धारणा।

साहित्य शब्द का सामान्य अभिप्राय सभी के हित से होता है अर्थात् वह लिखित रचना जो सभी के हित में हो; साहित्य कहलाती है। साहित्य की इस अवधारणा के अनुसार साहित्यकार का नैतिक कर्तव्य समाज को नैतिक-अनैतिक का बोध कराकर सही दिशा प्रदान करना है। साहित्यकार अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं धारणाओं को अपने साहित्य की विषय वस्तु बनाता है। वह समाज में जो देखता है, वही अपने साहित्य में चित्रित भी करता है। साहित्यकार कई बार समाज में प्रचलित विसंगतियों को साहित्यिक रूप में चित्रित करते हुए नैतिकता की सीमाएँ लाँघ जाते हैं, जिससे उनके साहित्य पर अश्लील, उत्तेजक, पतित साहित्य होने के आक्षेप लगते रहते हैं।

साहित्यिक समाज के समक्ष यह प्रश्न आज से नहीं है अपितु इसकी जड़े इतिहास में बहुत गहरी दबी हुई है। महाकवि कालिदास के द्वारा 'कुमारसम्भव' महाकाव्य की रचना के समय आठवें सर्ग में शिव-पार्वती के विवाहोपरांत प्रेमालाप एवं श्रृंगार सौंदर्य के साहित्यिक चित्रण को तत्कालीन समाज एवं सत्ताधीशों ने अश्लीलता का प्रत्यारोपण करके प्रतिबंधित करा दिया था। तब से लेकर आज तक यह श्लील-अश्लील संबंधी विवाद साहित्य एवं समाज के समक्ष खड़ा हुआ है। जिसे समय-समय पर और अधिक हवा-पानी देकर साहित्यकारों की स्वाभाविक रचना प्रक्रिया को बाधित किया जाता रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य में पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र', ईस्मत चुगतई, मंटों से लेकर सुरेन्द्र वर्मा जैसे प्रतिभासम्पन्न साहित्यकारों को भी इसी श्लील-अश्लील विषयक साहित्यिक-सामाजिक आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है। सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटक 'आठवाँ सर्ग' में साहित्य और समाज की इन्हीं श्लील-अश्लील विषयक सामाजिक अवधारणाओं तथा इनके कारण प्रभावित होती रचनाकार की मनःस्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। डॉ० विजयपाल इस संबंध में लिखते हैं, "महाकवि कालिदास के 'कुमारसंभव' के आठवें सर्ग को आधार बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने लेखकीय अभिव्यक्ति की मूल समस्याओं को उठाया है और इसलिए शासन, सत्ता और राजाश्रय की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को लेकर लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य और शासन की टकराहट को प्रस्तुत किया है।"[1] वे साहित्य सृजन की प्रक्रिया में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सामाजिक प्रतिबद्धताओं के बीच साहित्यिक लोकप्रियता को साहित्यकार की वास्तविक उपलब्धि मानते हैं। इस प्रकार यह नाटक केवल महाकवि कालिदास एवं उनके तत्कालीन समाज की साहित्य के प्रति दोहरी एवं हीन दृष्टि को ही उजागर नहीं करता अपितु समकालीन समय के साहित्यकारों के अंतर्मन की पीड़ा की भी मुखर अभिव्यक्ति करता है।

महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसंभव' एवं उसके आठवाँ सर्ग के प्रति साहित्य जगत् में कई जिज्ञासाएँ, कौतूहल एवं प्रश्नचिह्न विद्यमान है। यद्यपि कुमारसंभव महाकाव्य में 17 सर्ग हैं किंतु इसके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध सर्गों में भाषाई एवं अलंकारिक

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

दृष्टि से एकरूपता नहीं है। इसलिए इस रचना की पूर्णता पर संदेह के प्रश्न लगाये जाते हैं। स्वयं नाट्यकार सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक की भूमिका में इस रहस्य का पटाक्षेप करते हुए लिखा है, "यों तो 'कुमारसंभव' महाकाव्य पूरा 17 सर्गों का मिलता है, लेकिन यह लगभग सर्वमान्य है कि इसके आठ सर्ग ही कालिदास रचित हैं। आठवें सर्ग में शिव-पार्वती की केवल विलास-क्रीड़ाओं का स्वच्छंद चित्रण है। अलंकारशास्त्रियों ने इसके लिए कवि पर सुरुचिहीनता का भी दोषारोपण भी किया है। इन बातों से पता चलता है कि कदाचित कालिदास के समय में ही इस प्रकार के आक्षेप होने लगे थे।"[2] नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में साहित्यकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मर्यादाबोध के बीच आने वाले ऐसे ही प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयास किया है जोकि तब भी उठाये गए थे और आज लगाये जाते हैं।

नाटक के प्रथम अंक में महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के आठवें सर्ग की रचना करके एक मास बाद राजधानी में वापिस लौटे हैं और कामोत्सव के दिन उन्हें इस सर्ग का काव्यपाठ राजसभा में करना है। तत्पश्चात् महाकवि को सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वारा पट्टबंध सम्मान प्रदान किया जाएगा। 'आठवें सर्ग' की सृजन-प्रक्रिया के विषय में सेविका प्रियंवदा महाकवि के साथ गए कीर्तिभट्ट से उत्सुकतावश पूछती है-

"प्रियंवदा : (उत्सुकता से) कीर्तिभट्ट! आठवाँ सर्ग कब पूरा हुआ? कैसे पूरा हुआ?... तुमने तो एक-एक पृष्ठ की रचना देखी होगी?

कीर्तिभट्ट : तीन दिन पहले हुआ था। और जो तुम पूछती हो कि कैसे हुआ, तो समझ लो कि कीर्तिभट्ट के वहाँ रहने से हुआ।...सच कहता हूँ प्रियंवदा, एक सप्ताह तो कविवर ने एक शब्द नहीं लिखा, बस बैठे-बैठे पहले के सातों सर्ग पढ़ते रहे, या चुपचाप टकटकी लगाए कोरे भोजपत्र को निहराते...जैसे किसी ने जादू कर रखा हो। मैं पूछता कि आपानक लाऊँ? भोजन के लिए क्या बनाऊँ? कोई उत्तर नहीं मिलता, जैसे वाणी राजधानी में ही छोड़ आए हों!...भीतर से निकलते, तो उपवन में आ जाते, उपवन से निकले, तो बाहर वन में जा पहुँचते।...प्रातः काल देखता कि ऊषा की लाली परख रहे हैं, सायंकाल देखता कि झरने के किनारे बूँदों की बौछार में भींग रहे हैं, आधी रात को देखता की उजली चाँदनी में टहल रहे हैं। सात दिन तो मैं चुप रहा। आठवें दिन मैंने कह दिया कि स्वामी! ऐसे कैसे चलेगा? तीन सप्ताह बाद आपको यह सर्ग पढ़ना है, आपका राजकीय सम्मान होना है। कहीं ऐसा न हो कि सर्ग-रचना न हो सके, तो सम्मान ही न मिले।"[3]

समाज एवं आलोचक जिस कृति का आस्वादन करके उसके गुण- दोष परखते हैं। उसकी रचना प्रक्रिया में लेखक किस मनोस्थिति एवं निःशब्द वेदना से गुजरता है; सुरेन्द्र वर्मा जी ने उक्त वक्तव्य से इसी ओर ध्यान इंगित किया है। अस्तु साहित्य का सृजन करना साहित्यकार की साहित्य साधना है, जिसे करते हुए वह समूची दुनिया से दूर हो जाता है। साहित्य सृजन की यह प्रक्रिया उसके लिए एक अंतहीन वेदना होती है जिसकी तृप्ति उसे उसकी रचना की पूर्णता से ही मिलती है।

साहित्यकार समाज से जो ग्रहण करता है, वही साहित्य के रूप में समाज को वापिस लौटा देता है। महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के प्रथम सात सर्गों में पार्वती जन्म से लेकर शिव-पार्वती के विवाह तक का वर्णन कर चुके हैं। सातवें अंक के पश्चात् उनका विवाह राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से हो जाता है। कुछ समय दाम्पत्य जीवन के सुख को भोगने के पश्चात् महाकवि आठवें सर्ग की रचना के लिए राजधानी से पचास मील दूर एकांतवास में चले जाते हैं। आठवें सर्ग की केंद्रीय विषय वस्तु नवयुगल के दाम्पत्य जीवन में प्रवेश एवं प्रेम प्रसंगों का सौंदर्यपूर्ण चित्रण है। इस संबंध में विजयपाल सिंह लिखते हैं "प्रस्तुत नाटक कालिदास रचित 'कुमारसंभव' के 'आठवे सर्ग' की कथा पर आधारित है, जिसमें शिव-पार्वती की विलास क्रीड़ाओं का स्वच्छंद चित्रण है। लेकिन यहाँ कालिदास के कुमारसंभव की कथा कहना नाटककार का उद्देश्य नहीं है, बल्कि लेखक की पीड़ा को अभिव्यक्ति देना है।"[4] महाकवि कालिदास इस सर्ग की रचना से कुछ समय पूर्व ही नव वैवाहिक जीवन की सुखद अनुभूतियों से निकलकर आये हैं। परिणामस्वरूप आठवें सर्ग की सृजन - प्रक्रिया में दाम्पत्य जीवन के प्रेमालाप के अनुभवों की छाप स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक के आरंभ में ही सेविका प्रियंवदा और अनुसूया के बीच के वार्तालाप से प्रेम की इसी सौंदर्यानुभूति का विषद् वर्णन किया है-

प्रियंवदा : कुछ पल चुपचाप खड़ी रहना, तो धीरे-धीरे कई ध्वनियाँ उभरेंगी।

अनसूया : जैसे?

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

प्रियंवदा : वस्त्रों की सरसराहट...आभूषणों की झंकार...साँसों की तीव्रता...बाँहों का कसाव। स्त्री-पुरुष संबंध सदैव से ही समाज के लिए जिज्ञासा एवं कौतूहल के विषय रहे हैं। प्रायः कहा जाता है कि प्रेम देह का नहीं नेह का विषय है। किन्तु दैहिक प्रेम के बिना सृष्टि में जनन प्रक्रिया का सुचारू रूप से गतिशील होना संभव नहीं है। अस्तु स्त्री-पुरुष संबंध मानवीय गतिशीलता का आधार है। इसलिए इनके परस्पर संबंधों में लौकिक जगत् की सुख-दुख, पीड़ा की अनुभूति है तो अलौकिक रूप से सात जन्मों तक साथ निभाने का वचन भी बंधा हुआ है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने प्रस्तुत नाटक में स्त्री-पुरुष संबंधों में दैहिक मिलन की अनिवार्यता एवं पूर्णता के सुख को इस प्रकार से चित्रित किया है-

"प्रियंवदा : द्वार के खुलते ही सुगंधि का एक झोका सा निकलेगा। एक कुमारी कन्या के नासा-रंधों के लिए यह गंध बिल्कुल अनजानी होगी, पर हे मेघ-से काले-कजरारे केशों वाली! तुमरूकना नहीं, भीतर चली जाना!

अनसूया : फिर

प्रियंवदा : गवाक्ष बंद, हल्का अँधेरा!... पलंग के पास कुछ खाली चसक होंगे। उन पर दो युगल अधरों के स्पर्श जैसे अभी तक कसमसा रहे होंगे।

अनसूया : ऐसा?

प्रियंवदा : कुछ देर चुपचाप उस शैया को परखना। उस पर अधखिली कलियाँ बिखरी होंगी- म्लान-दोहरी हो चुकी पंखुडियों को हल्के से छूना, तो दो शरीरों के तप्त दबाव का आभास होगा।

प्रियंवदा : शुभ, श्वेत चादर पर यहाँ-वहाँ सिकुड़नें होंगी। एक ओर कुरंटक पुष्पों की माला पड़ी होगी-प्रगाढ़ आलिंगन में मसली हुई। सिरहाने का कर्णफल होगा, पैताने टूटी मेखला!

अनसूया : बेचारी!

"प्रियंवदा : क्योंकि ऐसा दृश्य कुमारी कन्या के हृदय पर भारी पड़ता है, पर तुम सारा मनोबल लगाकर उन्हें नीचे से ऊपर तक परखना।

अनसूया : तो?

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

प्रियंवदा : तुम्हें मालूम होगा कि उनका केशकलाप बिल्कुल उलझ गया है...उनकी मंद-मंथर गति में तृप्ति का मादक आलस।

अनसूया : ऐसा?

प्रियंवदा : तनिक सामने की ओर पहुँचना तो जानोगी कि.....

अनसूया : कि?

प्रियंवदा : देह का अंगराग..... माथे का तिलक ..... आँखों का अंजन.... अधरों का लाक्षारस.....कपोलों के विशेषक..... वक्ष के पत्र भंग....सब मिटे या अधमिटे हैं।

अनसूया : भला क्योंकर?

प्रियंवदा : कुछ को व्यग्र स्पर्शो ने सोख लिया। कुछ आलिंगनों की तरंगों में विलीन हुए। रहे-सहे तप्त चुंबनों में झुलस गए।

अनसूया : च्चच्च...च्चच्च!

प्रियंवदा : कुछ पास जाना, तो देखोगी कि उनकी देह पर कितने ही दंतक्षत और नखविन्यास हैं इसलिए उन्होंने आज हम लोगों को अपने पास से हटा दिया है....जानती हो, कहाँ-कहाँ?"[6]

सुरेन्द्र वर्मा के नाटक आठवाँ सर्ग में अनसूया और प्रियंवदा के बीच का यह वार्तालाप महाकवि कालिदास और उनकी पत्नी राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के प्रणय-मिलन की सौंदर्यानुभूतियों को उद्घाटित करता है। महाकवि कालिदास के जीवन का यह पड़ाव उनके महाकाव्य 'कुमारसंभव' के मध्य में आया था। महाकवि इस महाकाव्य के सात सर्गों में शिव-पार्वती के जीवन के आरंभिक अवस्था से विवाह तक का वर्णन कर चुके हैं तथा आठवें सर्ग में उन्हें भगवान शिव एवं माता पार्वती के प्रणय निवेदन को काव्यानुभूति प्रदान करनी थी। महाकवि कालिदास ने साहित्यिक कर्म के अनुसार समाज में जो देखा और ग्रहण किया है, उसी की लौकिक अनुभूतियों को आठवें सर्ग में प्रदर्शित किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'कुमारसंभव' महाकाव्य के 'आठवाँ सर्गः की वैचारिक पृष्ठभूमि मानवीय संबंधों की लौकिक अनुभूतियों से जुड़ी हुई है। जिसमें दैवीय संबंधों को मानवीय लोक-व्यवहार की कसौटी पर कसा गया है।

महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के आठवें सर्ग की रचना के उपरांत अपने शयनकक्ष में विश्राम कर रहे हैं। साथ में उनकी प्रियसी एवं धर्मपत्नी प्रियंगुमंजरी आठवें सर्ग का रसास्वादन कर रही है। प्रियंगुमंजरी महाकवि के मुख से आठवें सर्ग को सुनकर लज्जा भाव का अनुभव करती है। वह कवि को उलाहना देती हुई कहती है कि इस सर्ग में प्रणय-संबंधों के चित्रण से, उन्होंने उनके संबंधों की निजता का हनन किया है-

"प्रियंगु : यह सर्ग पहले ही क्यों नहीं लिख लिया? ब्याह के पहले.... बाद के लिए क्यों रख छोड़ा?

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

कालिदास : (कृत्रिम भोलेपन से) तब मुझे इस बात का अनुभव कहाँ था कि ब्याह के बाद नवदंपत्ति का पारस्परिक.... व्यवहार क्या और कैसा होता है?

प्रियंगु : (झेंपकर)... जैसे अभी तक सब कुछ तुमने अपने अनुभवों से ही लिखा हो!...कल्पना और अंतर्दृष्टि क्या किसी ने छीन ली थी?

कालिदास : लेकिन तब अनुभूति की प्रखरता कहाँ से आती?

प्रियंगु : यह क्यों नहीं कहते कि मुझे लज्जित करने का आनन्द कहाँ से मिलता ?.... अब मैं कैसे : कालिदास प्रियंगु जाऊँ राजमंडल में? माता-पिता, परिवार के कुल संबंधी, गुरुजन, सब सखियाँ-सहेलियाँ, निम्न और उच्च सारे पदाधिकारी, संगत और मांडलिक, संभ्रात नागरिक और उनकी धर्मपत्नियाँ, देवारिक प्रतिहार और दासियाँ-सभा में उपस्थित एक-एक व्यक्ति समझ जाएगा कि काव्य की यह उमा (संकेत सहित) वह बैठी हैं....सामने।"[7]

प्रियंगु मंजरी कालिदास पर यह आरोप लगाती है कि कालिदास ने आठवें सर्ग की रचना में उन दोनों पति-पत्नियों की प्रणय मिलन के सौंदर्यपूर्ण क्षणों का प्रतीकात्मक रूप से चित्रण किया है। वह कालिदास को उलाहना देती हुई कहती है।

"कालिदास : (हल्की मुस्कान से) तुम इस तरह सोचोगी, यह बात मेरे मन में नहीं आई थी।

प्रियंगु : (प्रगल्भ दृष्टि से उसकी ओर देखकर) तुम स्त्री नहीं हो न, इसलिए!... (पांडुलिपि उठाकर पन्ने पलटने लगती है। रूककर मंदस्मित से) बहुत विचित्र-सा लग रहा है। (कालिदास प्रश्नात्मक दृष्टि से देखता है (कुछ क्षण सोचती-सी रह जाती है) उज्जयिनी के जिस नागरिक ने कभी राजप्रसाद के सिंहद्वार में भी पैर नहीं रखा, मुझे कभी नहीं देखा, जाना नहीं, वह इस आठवें सर्ग के पृष्ठ खोलेगा...और मेरे भवन के अंतःपुर के शयनागार के बंद द्वार खुलने लगेंगे|.... मेरे बिल्कुल निजी अनुभव, मेरी नितांत व्यक्तिगत अनुभूतियाँ इस तरह उजागर हो जाएँगी, जैसे किसी प्रदर्शन में रखी हों!...मालूम नहीं था कि रचनाकार से जीवन जोड़ लेने के बाद कुछ भी गोपनीय नहीं रह जाता।"[8]

साहित्य में निजता का यह हनन केवल कालिदास एवं प्रियंगुमंजरी के निजी जीवन का ही नहीं हुआ है अपितु यह सत्य है कि साहित्यकार अपने साहित्य में धीरे-धीरे अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों की परतें ही खोलता रहता है। साहित्य का आमजन से जुड़ जाना ही उसकी वास्तविक सार्थकता है। महाकवि कालिदास ने आठवें सर्ग में इसी वास्तविक स्वीकार्यता को ग्रहण करके ईश्वर को भी मानव के रूप में चित्रित किया है। इसलिए शिव-पार्वती के विवाहोपरांत मधुर मिलन की बेला की रचना करते हुए ईश्वरी जगत् सत्ता के बजाए मानव जगत् की लौकिक रास क्रियाओं एवं उनसे फलीभूत हुई काम-क्रीड़ाओं का उन्मुक्त चित्रण आठवें सर्ग में किया गया है।

कालिदास ने 'आठवें सर्ग' को सुनकर केवल उनकी पत्नी प्रियंगुमजरी ने ही उन्हें लोकमर्यादाओं का उल्लंघन करने का दोष नहीं दिया अपितु उन पर कई और आक्षेप भी लगाए गए। इसलिए ही धर्माचार्य ने आठवें सर्ग में अपने आराध्य देव शिव-पार्वती के विषय में नैतिकता की सीमाओं को लाघने का आरोप लगाते हुए उस पर प्रतिबंध लगाने की माँग की। राजसत्ता सदैव ही धर्मसत्ता के आगे झुकती रही है। सम्राट चन्द्रगुप्त महाकवि कालिदास की प्रतिभा का बहुत सम्मान करते हुए भी धर्मसत्ता और अन्य गणमान्यों के समक्ष झुक जाते हैं। नाटक का द्वितीय अंक महाकवि कालिदास का राजसभा में आठवें सर्ग का काव्य पाठ एवं उससे संबंधित वाद-विवाद जुड़ा हुआ है। इस संबंध में अनसूया प्रियंगु से कहती हैं-

"अनसूया: ज्यों ही वह स्थल आया कि शयनागार में उमा और महादेव एक-दूसरे को पराजित करने पर तुले हुए थे। दोनों के केश छितरा गए, चंदन पूछ गया, उमा की मेखला टूट गई, लेकिन उसके साथ....(अटक जाती है। खाँसकर) क्रीड़ा- केलि से महादेव का मन नहीं भरा.... त्यों ही क्रोध से तमतमाया चेहरा लिए धर्मगुरू खड़े हो गए और गरजकर बोले कि यह सर्ग अत्यंत अश्लील है। जगत्पिता महादेव और जगत्जननी पार्वती के भोग-विलास का ऐसा उद्दाम ऐसा स्वच्छंद ऐसा नग्न चित्रण!...इसका रचयिता पापी है, इसके श्रोता पापी हैं।....ऐसे अधर्मी और अनाचारी कवि के सम्मान में जो भाग ले, वह पापी है।"[9]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

धर्मगुरु के साथ-साथ महादंडनायक तथा अन्य गणमान्यों ने भी दिया और सभी लोग इस पर मर्यादाहीन होने के कारण प्रतिबंधित करने की माँग करने लगे। राजसभा के केवल आर्य सौमित्र को छोड़कर सभी लोग धर्मगुरु के पक्ष में आ गए । यद्यपि आर्य सौमित्र कालिदास के पक्ष में तर्क रखते हैं, तथापि उनकी बात को बहुमत के पक्ष में अनसुना कर दिया गया।

"प्रियंगु : पक्ष में कोई नहीं बोला?

अनसूया : आर्य सौमित्र ने बहुत ऊँचे स्वर में कहा कि सर्ग अश्लील नहीं है। पति-पत्नी के पारस्परिक संबंध भी कहीं अश्लील होते हैं? अश्लीलता आरोप करने वालों की दृष्टियों में है, उनकी आँखों में, उनके मन में है। इसके बाद नई पीढ़ी के आठ-दस रचनाकार खड़े हुए और बोले कि इस पुरानी पीढ़ी को काव्य की समझ ही क्या है। इनकी साहित्यिक चेतना तो बाल्मीकि रामायण तक सीमित हैं। इन कट्टर, पुराणपंथियों का हस्तक्षेप हम किसी भी प्रकार सहन नहीं करेंगे।"[10]

महाराज चन्द्रगुप्त ने विवाद को रोकने हेतु एक जाँच समिति की घोषणा कर दी। जिसका कार्य आठवें सर्ग पर लगे आरोपों के आधार पर उसकी जाँच करना था। समिति कालिदास को सभी के समक्ष माफी माँगने का प्रस्ताव देती है लेकिन कवि की अंतश्चेतना यह स्वीकार नहीं कर पाती कि उसे अपनी रचना के लिए किसी से क्षमायाचना करनी पड़े। वह सम्राट चन्द्रगुप्त से कहते हैं-

"चन्द्रगुप्त: अर्थात् झुकना तुम्हें ही है, समझौता तुम्हें ही करना है, क्योंकि इसी में तुम्हारा हित है.... और मेरा भी!

कालिदास : यदि ऐसा न हुआ, तो?

चंद्रगुप्त : कालिदास व्यर्थ की हठ मत करो। यदि लोगों का आक्रोश बढ़ता गया तो हो सकता है कि मुझे तुम्हारी सुरक्षा के लिए इस बात का आदेश देना पड़े कि तुम्हें उज्जयिनी से निष्कासित कर दिया जाए।

कालिदास : (धीमे स्वर में) 'कुमारसंभव' को मैं अधूरा ही छोड़ दूँगा। आठवें सर्ग पर आगे नहीं लिखूँगा। इस रचना को एक प्रकार से भूला ही दूँगा। यह कभी मेरे घर से बाहर नहीं निकलेगी। किसी गोष्ठी में इसका पाठ नहीं होगा। किसी तक इसकी प्रतिलिपि नहीं पहुँचेगी।... इतने से लोग संतुष्ट हो जाएँगे। फिर तो किसी को आपत्ति नहीं होगी।

चंद्रगुप्त : (कालिदास की तरफ देखता रहता है। सहमति में सिर हिलाता है, सोचता हुआ-सा) लेकिन अधूरा छोड़ दोगे? तुमने इस पर इतना श्रम किया है।"[11]

अंततः कालिदास की यह श्रेष्ठ रचना श्लील-अश्लील की मर्यादाओं के बीच में उलझकर अधूरी ही रह गई। आठवाँ सर्ग नाटक के तीसरे अंक में घटना के तीन वर्ष पश्चात् वसन्तोत्सव के दिन 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' नाटक के स्वर्णजयंती पर महाकवि कालिदास का सम्मान समारोह हो रहा है। राज्य एवं उसकी जनता अपने महाकवि को हृदय में बिठा लेना चाहती है किंतु महाकवि के मन में इसे लेकर कोई उत्साह का भाव नहीं है। वह रंगशाला में आयोजित होने वाले सम्मान समारोह में नहीं जाते हैं। प्रियंगुमंजरी के द्वारा न आने का कारण पूछने पर वह बताते हैं।

"कालिदास : संध्या-वेला को वन की शांति...कोविदार, कंदब और सर्ज के वृक्ष. ऊँचे! मौन कुंद और कुरबक के पौधे! सुकुमार! निष्पाप! पीछे शिप्रा... अपनी ही लगति पर मुग्ध प्रवाह.....जल की अनवरत कलकल....सलोनी।...ऐसे पुनित सम्मोहन को छोड़कर कहाँ जा रहा हूँ मैं?..... मैं क्या करूँगा वहाँ? यह सम्मान मुझे क्या देगा?....इस नाटक को जो देना है, मुझे वह दे चुका है।.... रचना का संतोष... देश के कोने-कोने से दर्शकों की साझेदारी..... भावोपलब्धि के बाद की उनकी निरंतर चलती करतल ध्वनि।"[12]

रचनाकार के लिए उसकी रचना का सबसे बड़ा सम्मान उसका जन-जन तक पहुँचना है। यहीं उस रचना एवं रचनाकार की सुखद उपलब्धि है। रचना की इस सार्थकता के आगे उसके अन्य सभी सम्मान एवं पुरस्कार बेमानी है। महाकवि कालिदास राज्य आश्रित मान सम्मान एवं उपलब्धि से बहुत दूर जा चुके हैं, उनकी ख्याति सुदूर देश-देशांतर तक फैल चुकी है। उज्जयिनी के सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वारा सम्मान समारोह में न आने का कारण पूछने पर कालिदास का कथन इसकी पुष्टि करता है-

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

"कालिदास : शिप्रा की वर्तुल लहरे देखते-देखते अचानक तीन वर्ष पहले की याद आ गई।...आज ही का दिन था...ऐसा ही उत्सव... ऐसा ही आह्लाद... और तब लगा कि राज्य मेरे सम्मान के लिए इतना उतावला क्यों है.... आपने अपनी अश्वमेघ यात्रा में देख लिया कि एक रचनाकार जनमानस में कितने गहरे पैठ चुका है। शासन अब क्या चाहता है?... रचनाकार को स्वीकार करके अपने किए को अनकिया करना चाहता है? बतलाना चाहता है कि यह सचमुच सुसंस्कृत है, साहित्यिक गरिमा का पारखी... ललित कलाओं का अनुरागी....।"[13] कालिदास की रचना पर अश्लीलता का आरोपण करके जिस राज्य एवं उसकी जनता ने प्रतिबंधित किया था, आज वहीं लोग उनका एवं उनके रचनाकर्म का सम्मान करना चाहते हैं किंतु कालिदास के रचनाकर्म को उनका वास्तविक सम्मान मिल चुका है और अब उन्हें ऐसी जनता अथवा राज्य से कोई अन्य सम्मान प्राप्त करने की इच्छा नहीं है, जिसे साहित्यिक सौंदर्य की परख ही नहीं हो। साहित्य की उपेक्षा का यह क्रम अभी भी जारी हैं। आज का लेखक भी इन्हीं प्रश्नों से जूझता रहा है। डॉ० अशोक एम० पटेल इसी विषय में लिखते हैं, "आठवाँ सर्ग में सुरेन्द्र वर्मा ने कालिदास की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता की पीड़ा को व्यक्त किया है। आज का रचनाकार भी कालीदास की तरह व्यवस्था की सीढ़ियों पर एड़ियाँ घिस घिस कर दम तोड़ने के लिए विवश है, किंतु उसकी अभिव्यक्ति को कोई समझने को तैयार नहीं है।"[14]

इस तरह नाटक सत्ता एवं समाज के आगे केवल महाकवि कालिदास की बेबसी को ही नहीं दर्शाता अपितु साहित्यिक जगत् के हर उस लेखक की व्यथा को उजागर करता है, जिसकी श्रेष्ठ रचना को श्लील-अश्लीलता का आरोप मढ़कर हाशिए पर धकेल दिया जाता है। श्लील-अश्लीलता की सीमाओं का निर्धारण करता समाज रचनाकार की वास्तविक प्रतिभा को भी नैतिकता एवं मर्यादाबोध के अंकुश में कसना चाहता है। सत्ता व समाज के मठाधीश ऐसा करते हुए यह भी ध्यान नहीं रख पाते हैं कि इससे साहित्य वास्तविकता से कोसों दूर हो जाएगा।

साहित्य समाजानुरूप ही सृजित होता है। यदि रचनाकार सृजन की इस परिधि का परित्याग कर देगा, तो उसका साहित्य समाज हित से दूर केवल मनगढ़त कल्पनाओं का पिटारा भर रह जाएगा। अस्तु कोई भी रचना श्लील-अश्लील नहीं होती है। उसके पाठक की दृष्टि ही उसे मूल्यवान और सार्थक बनाती है। साहित्यकार समाज के आगे मशाल लेकर चलता है, उसे समाज में जो दिखता है, उसी को वह अपने साहित्य के रूप में समाज को लौटा देता है। निष्कर्षतः साहित्य को श्लील-अश्लील की परिधियों में बाँटने वाले साहित्य समीक्षकों, सत्ताधीशों और धर्माचार्यों को पहले समाज से इन प्रक्रमों को हटाना पड़ेगा, तभी वह साहित्य पर दोषारोपण कर सकते हैं। कालिदास से लेकर सुरेन्द्र वर्मा तक अनेकानेक रचनाकारों को इस आक्षेप का सामना करना पड़ा है।

'आठवें सर्ग' नाटक में इन्हीं श्लील-अश्लील विषयक धारणाओं को डॉ० भानु भाई रोहित और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "आठवाँ सर्ग सुरेन्द्र वर्मा का बहुचर्चित नाटक है। इसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में श्लीलता - अश्लीलता के प्रसंग को लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं राजाश्रय की समस्याओं के साथ उठाया गया है। प्रस्तुत नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने सत्ता एवं समाज के कठघरे में खड़े किए गए प्रथम साहित्यकार के साथ-साथ अपने जैसे उन सभी रचनाकारों की भी पैरवी की है, जिनकी श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियों को इसी श्लील-अश्लील संबंधी धारणाओं के समक्ष प्रश्नचिह्नित किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'आठवाँ सर्ग' लेखकीय स्वतंत्रता एवं सामाजिक ग्राह्यता के बीच रचना की वास्तविक उपलब्धि को निर्धारित करती हुई सफल नाट्यकृति है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने रचनाकार की नैसर्गिक, उसकी सृजनदृष्टि तथा भावलोक के बीच तारतम्य को बाधित करने वाले कारकों का सूक्ष्मान्वेषण किया है। अस्तु यह नाटक साहित्य, समाज और लोक के बीच अंतर्संबंध स्थापित करते साहित्यकार की आंतरिक पीड़ा को स्वर प्रदान करता है, जिसमें उसकी साहित्यिक स्वीकार्यता के विस्तार को ही उसकी वास्तविक उपलब्धि दर्शाया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा द्वारा सृजित 'आठवाँ सर्ग' नाटक साहित्य के प्रति लोक व जनमानस में व्याप्त अवरधारणाओं को तोड़ता है। यह इतिहास व वर्तमान के बीच भविष्य को देखने की नई समझ विकसित करता हुआ, समाज निर्माण में साहित्य व साहित्यकार की निर्णायक भूमिका तय करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ० विजयपाल, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध, नीरज बुक सेंटर, मदर डेयरी, पटपड़गंज, दिल्ली-110092 प्रथम संस्मरण, पृ० सं० 34

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 4, Issue 12, December 2017 |

2. सुरेन्द्र वर्मा, लेखकीय वक्तव्य से उद्धृत, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली-110070. प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 13
3. सुरेन्द्र वर्मा, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली-110070. प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 6-7
4. डॉ० विजयपाल, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध, नीरज बुक सेंटर, मदर डेयरी, पटपड़गंज, दिल्ली-110092, प्रथम संस्मरण, पृ०सं० 34
5. सुरेन्द्र वर्मा, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 10
6. वहीं, पृ०सं० 11-12
7. वहीं, पृ०सं० 19-20
8. वहीं, पृ०सं० 21
9. वहीं, पृ०सं० 25
10. वहीं, पृ०सं० 26
11. वहीं, पृ०सं० 45
12. वहीं, पृ०सं० 55-56
13. वहीं, पृ०सं० 58
14. डॉ० अशोक एस० पटेल, सुरेन्द्र वर्मा और आठवाँ सर्ग, चिन्तन प्रकाशन, 3ए / 119, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर-208021. प्रथम संस्करण, 2010. पृ०सं० 81
15. डॉ० भानू भाई रोहित, सुरेन्द्र वर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 3ए / 119, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर- 208021, प्रथम संस्करण, 2010, पृ०सं० 93